कुमारप्पा - सवा सौ के निमित्त

आदरणीय जे. सी. कुमारप्पा (मूल नाम : जोसफ चेल्लादुरै कोर्नेलियस) की १२५वीं पुण्यस्मृति के प्रसंग पर कुछ विशेष बातों का स्मरण होना स्वाभाविक है। वैसे तो वे मेरी बाल्यावस्था के दौरान – जब मैं महज ८ वर्ष का था तभी - वे देह छोड़ चुके थे लेकिन उनका वैचारिक वर्सा मुझे मेरे पिताजी (अखिलभाई पंड्या) के मार्फत प्राप्त हुआ था । उसकी स्मृति आज भी ताजी है ।

मेरे पिताजीने वर्धा में 1950 के दौरान मगनवाडी में रहकर बुनियादी शिक्षा और तालीम प्राप्त की थी । उनकी एक आदत थी - अपने जीवन के अनुभवों को परिवारजनों के बीच उजागर करना और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से हमारा चरित्र निर्माण करना। उनके वे वर्णन आज भी जैसे मेरे अपने अनुभव हों इस तरह दिलो-दिमाग पर छपे हुए प्रतीत होते हैं ।

उन्होंने पिछली सदी के पाँचवें दशक में ली हुई द्वि-वर्षीय तालीम के दौरान अपनाई गई विधि का वर्णन किया था । उसके अंतर्गत-साबुन बनाने की विधि, खादी उत्पादन की विधि, ताड़-गुड़ उत्पादन विधि, घानी का तेल बनाने की विधि या गांव-गांव पंचायती राज कैसे लाया जाए उसकी तालीम दी जाती थी। तालीम के दौरान जिन-जिन साधन-सामग्रिओं की आवश्यकता होती थी उसका परिचय देना, उसके उत्पादन की विधि, उनका रासायनिक बंध, वे जहाँ प्राप्त होते हैं वहाँ का भूगोल और सामग्री का इतिहास, उत्पादन प्रक्रिया के दौरान उसमें होने वाली रासायनिक प्रक्रियाएं, उत्पाद का आर्थिक-रोजगारी और पर्यावरणीय पहलू, उनका सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पहलू उजागर करना आदि रहता था। उत्पादन से होने वाले फायदों का वर्णन आदि जैसी बातों का समावेश किया जाता था और वह सब होता था उत्पादन केन्द्री शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत।

इस प्रक्रिया में केवल अक्षरज्ञान ही नहीं बल्कि उत्पादक श्रम, श्रम की प्रतिष्ठा, आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक जागृति और क्लर्क नहीं बल्कि रोजगार उत्पादन करने वाली शिक्षा स्थापित की गई। काश ऐसे विद्यालय प्रचलित हो सकते, विस्तार पाते और लोगों के दिल-दिमाग पर ऐसी पकड़ जमाते तो कितना अच्छा होता ! आज नौकरी की खोज कराने वाली शिक्षा व्यवस्था न होती वरन् नौकरी दिला सकने वाला कारोबार नजर आता ।

इसी शिक्षा के रहते ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत केवल इन्टर आर्ट्स होने के बावजूद वे खादी ग्रामोद्योग विद्यालय, ताड़गुड़ विद्यालय, पंचायती राज विद्यालय, आश्रम संचालन, गांधी शताब्दि वर्ष की सेवाओं, गांधी विचार परीक्षाओं का संचालन आदि में - उच्च पदासीन होकर असरकारक रूप से कर सके और आजीवन करते रहे ।

इस शिक्षा प्रणाली के मूल में कुमारप्पा जी के कुछ विचार थे – जिसमें उन्होंने धर्म और अर्थ अर्थात् आध्यात्मिकता और अर्थव्यवस्था का केवल उत्पादकता केन्द्री नहीं बल्कि सर्वाश्लेषी स्वरूप को अपनाया गया था । आइए उनके आर्थिक विचारों के बारे में हम कुछ विचार करें । वे कहते थे –

Humans are not merely wealth-producing animals. They are members of society with political, social, moral and spiritual responsibilities. (अर्थात् मनुष्य मात्र संपत्ति उत्पादन करने वाला प्राणी नहीं है । वह राजनैतिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक जिम्मेवारी निभाने वाला समाज का सदस्य है ।)

महात्मा गांधीजी को यही तो अभिप्रेत था नई विकेन्द्रित - स्वदेशी - आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत । इसी सिद्धान्त के चलते कुमारप्पाजी को महात्मा गांधीजी ने अपने साथ जुड़ने का निमंत्रण दिया और एक नई अर्थव्यवस्था / नया अर्थ-दर्शन का विचार करने और उसे अमली जामा पहनाने का कार्य सौंपा।

आज विश्व जिन कठिन परिस्थितियों से गुजर रहा है उसमें कुमारप्पा जी के विचार बखूबी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं ।

कुमारप्पाजी आर्थिक मामलों में महारत रखते थे । **इकोनॉमी ऑफ परमानन्स** नाम के अपने ग्रन्थ में उन्होंने अहिंसा मूलक सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के लिये जिन आर्थिक विचारों और सिद्धान्तों की आवश्यकता जताई है वह इस प्रकार है -

> प्रकृति में सभी जीव-वनस्पति इस प्रकार से जीते हैं जिसमें हरेक इकाई अपनी स्वयं की निश्चित भूमिका बखूबी निभाए और इस प्रकार प्रकृति अपनी सभी इकाईओं का सहयोग प्राप्त करती है, हरेक इकाई अपने लिये कार्य करे और उसी प्रक्रिया के दौरान अन्य इकाइओं को अपने कार्यकलाप करने में सहायक सिद्ध हो। जब यह कार्य सौहार्द से सम्पन्न होता है और हिंसा इस कडी को तोड़ नहीं पाती – तभी इकॉनॉमी ऑफ परमानन्स - अर्थात् सस्टेइनेबल डेवलपमेन्ट – टिकाउ विकास, सम्पन्न हो सकता है ।
>
> वे मानते थे कि टिकाऊ अर्थव्यवस्था में हरेक इकाई अन्य सभी इकाईयों की मददगार रहती है। इसके विरुद्ध कालसापेक्ष (अर्थात् भंगुर) व्यवस्था में हिंसा अनिवार्य है, वह प्रकृति का दोहन नहीं शोषण करती है । कुमारप्पा जी ऐसी हिंसक व्यवस्था को फसल बढ़ाने के लिये कीटनाशकों और रासायनिक खादों के उपयोग से जोड़ते हैं। इससे फसल अवश्य बढ़ती है लेकिन इससे जमीन बरबाद होती है - फिर हरियाले खेतों की बहार नदारद हो जाती है । टिकाउ अर्थव्यवस्था कभी प्रकृति का विनाश नहीं कर सकती ।

आज देश-दुनिया में सजीव खेती, योगिक खेती, ऋषि खेती आदि का बोलबाला चल रहा है - यदि भारत ने इसे आजादी के तुरन्त बाद अपनाया होता तो हम जिस प्रकार की केन्द्रित, पर्यावरण शोषक व्यवस्था के जो दुष्परिणाम भुगत रहे हैं उससे बचे रहते। रोजगार की समस्या कभी आती ही नहीं ।

खैर, विषय बहुत विशाल है । समस्याएं भी विशाल हैं । लेकिन समय के तकादे को ध्यान में रखते हुए लगता है कि आज कुमारप्पा जी जितने प्रस्तुत हैं उतने कभी नहीं थे -चाहे क्षेत्र शिक्षा व्यवस्था का हो या अर्थ व्यवस्था का, चाहे पर्यावरण का हो या समाज व्यवस्था का , धर्म व्यवस्था का हो या जीवन व्यवस्था का ।

उनके सवा-सौवीं जन्म-जयन्ति पर पुण्य स्मरण । जय जगत्

विनय अखिलचंद्र पण्ड्या

वल्लभ विद्यानगर, गुजरात, 09824448811